National Journal of Multidisciplinary Research and Development
ISSN: 2455-9040
Impact Factor: RJIF 5.22
www.nationaljournals.com
Volume 2; Issue 3; September 2017; Page No. 620-621

राजपूत सैन्य व्यवस्था

निशान्त कुमार
शोध छात्र, इतिहास विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश, भारत।

प्रस्तावना

हर्ष के पश्चात् एक शक्तिशाली केन्द्रीय सत्ता के अभाव में राजनीतिक विखण्डन की प्रवृत्ति प्रारंभ हो गयी।[1] उत्तरी एवं मध्य भारत में प्रतिहार साम्राज्य के पतन ने राजनीतिक बिखराव की इस प्रक्रिया को और तेजी प्रदान कर दी। इन परिस्थितियों ने एक नवीन राजनीतिक वर्ग, राजपूत वर्ग के उदय के लिये पृष्ठभूमि का निर्माण किया।[2] दसवीं शताब्दी के मध्य से लेकर 13वीं शताब्दी के आरम्भिक वर्षों तक अर्थात दिल्ली सल्तनत की स्थापना के समय तक खासतौर पर 'उत्तर भारत की राजनीति में राजपूतों की महत्वपूर्ण भूमिका रही।[3]

राजपूतों की सैन्य व्यवस्था सामंती स्वभाव की थीं। हालांकि अधिकारियों को नकद वेतन के बदले भूमि–अनुदान देने की प्रथा की उत्पत्ति बहुत पहले हो चुकी थी, लेकिन इस काल में आकार वह और निश्चित रूप ग्रहण करने लगी।[4] राजपूत सेनाओं की संरचना और संगठन सामंतीय आधार पर किया जाता था। राजपूतों की सेना में स्थायी सैनिकों का अभाव था। इसके परिणा के चलते सैनिकों के नेतृत्व की जिम्मेदारी पर समाज के एक वर्ग विशेष (जागीरदार) का अधिकार बन गया। बड़े जागीरदारों को सैनिक सेवा के बदले में जागीरे दी जाती थी। इन्हीं जागीरों की आमदनी से उन्हें अपने पास सेनायें रखनी पड़ती थीं तथा आवश्यकता के अनुसार उन्हें राज्य की सैनिक सहायता करनी होती थी।[5]

यही व्यवस्था आगे चलकर अनुवांशिक बन गयी और सैनिक नेतृत्व का आधार योग्यता न होकरपैतृक अधिकार हो गया। यह प्रणाली दोषपूर्ण थी, परन्तु उस काल परिस्थिति में विश्वभर में यही सैन्य पद्धति प्रचलित थीं।

राजपूतों की सेना में पैदल, अश्वारोही और गज सेना होती थी। तोपखाने का पूर्णतः अभाव था। इनकी सेना का आधार अश्वारोही थे। बाद में गज सेना व तोपखाना इनकी सेना का हिस्सा बने।[6] प्रारंभ में धुड़सवार सेना ही राजपूत समरतंत्र की उच्चस्तरीय गतिशीलता का आधार थी। वह गुरिल्ला (छापामार) पद्धति पर अधिक विश्वास करते थे। बाद में गजसेना व तोपखानों को शामिल करने के साथ–साथ इनकी नीति में भी परिवर्तन आया।

सेना में अश्वारोही सेना की महत्वपूर्ण स्थिति का उल्लेख करते हुए मेजर डेविड ने लिखा है कि "राजपूत सेना का मेरूदंड घुड़सवार सेना थी। राजपूत इस गतिशील सेनांग में अपनी पूरी आस्था रखते थे। अश्वारोही सेना हल्के शस्त्रों से सुसज्जित रहती थी। इन शास्त्रास्त्रों में प्रायः तलवार, कृपाण और भाले होते थे। उन पर कुछ कवचयुक्त धनुषधारी भी रहते थे।[7] सैनिकों को अपने हथियार व साज–सामान स्वयं लाने पड़ते थे। राज्य की तरफ से हथियार आदि की व्यवस्था नहीं थी।

सैनिक व्यवस्था की दृष्टि से सैनिकों के छोटे–छोटे दल होते थे, जिनका एक नेता होता था। सेना का प्रधान नायक राजा ही होता था और जागीरदारों की सेना जागीरदार के नेतृत्व में ही रहती थी। सैनिकों के लिये वेतन की व्यवस्था नहीं थी। केवल उन्हें भूमि प्रदान की जाती थी। कुछ सैनिकों को विशेषकर युद्ध के समय भर्ती किये जाने वाले सैनिकों को नकद वेतन दिया जाता था। कुछ ऐसे भी सैनिक होते थे, जिनके वेतन का भुगतान अनाज के रूप में किया जाता था। पेंशन, भत्ता आदि की कोई व्यवस्था नहीं थी। शस्त्रों की दृष्टि से राजपूत सेना में प्रमुखतः धनुष–बाण, तलवार, भाला इत्यादि होता था। रक्षात्मक शस्त्रों में ढाल और कव च मुख्य थे, लेकिन राजपूत अधिकांशतः तलवार धारण करते थे। मुठभेड़ की लड़ाई में तलवार और भाला का प्रयोग होता था।

राजपूतों ने युद्धकला के लिहाज से छापामार पद्धति को अपनाया। प्रारंभ में राजपूत मुगलों से मैदानी युद्ध करते थे। परन्तु मुगलों की बंदूक तोप से रक्षा हेतु राजपूतों ने छापामार युद्ध का अपनाया क्योंकि उनका कोई ठोस संगठन नहीं था, जिससे कि वे मैदानें में मुगलों जैसी बड़ी सेना का सामना जमकर कर सके। वे छोटी–छोटी टोलियों में बंटकर पहाड़ी भागों से मुगलों की सेना पर अचानक आक्रमण करते थे और पुनः पहाड़ियों में छिप जाते थे। वे भौगोलिक दशा के अनुसार युद्ध की येाजना बनाते थे। इसी युद्धकला के आधार पर महाराणा प्रताप मुगलों से अपनी इज्जत की रक्षा कर सकने में सफल रहे।[8]

राजपूत युद्धकला में निपुण थे। श्री आर0आर0 सेठी का कहना है कि "सैनिक क्षेत्र में राजपूत हिंदुओं के नेता और वीरता के लिये जगत विख्यात थे।" उनका मत है कि "राजपूत लोग शक्तिशाली, वीर, युद्धप्रेमी, रक्तपात को पसंद करने वाले तथा जबरदस्त राष्ट्रीय भावना से ओत प्रोत और युद्ध क्षेत्र के सबसे अधिक मजे हुए अनुभवी योद्धाओं से आमने–सामने मुकाबला करने को तैयार रहते थे। वे अपनी प्रतिष्ठा के लिये हर समय प्राण देने को तैयार थे।"

राजपूत राजाओं के दुर्ग युद्ध–कला की दृष्टि से बहुत सुदृढ़ और उत्तम थे। उनके ये दुर्ग उनकी रक्षात्मक प्रणाली का आधार थे। राजपूत राजाओं ने अपने राज्यों के मुख्य मार्गों के साथ पहाड़ी आदि स्थानों पर अनेक किले बनवाये थे। इन किलों में पर्याप्त युद्ध–सामग्री रखी रहती थी जिससे आपात स्थिति में भी सन्तुलित व्यवस्था बनी रहे। जबकि किसी शत्रु के किले पर अधिकार करने की मंशा होती थीं, तो घेरा डालने की विधि अपनायी जाती थी जिससे शत्रु का बाहरी दुनिया से सम्पर्क टूट जाय और वह आत्मसमर्पण करने को विवश हो जाय।[9] आज भी राजस्थान में कई किले अस्तित्व में है और वे अपने गौरवमयी इतिहास का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

इन किलों की प्रशंसा में सेठी व महाजन महोदयों ने कहा है कि "राजपूत राजा भी पर्याप्त रूप से बलवान थे और अपने किलो में डटे हुए अकबर के दुर्धर्ष शत्रु थे।"[10]

राजपूत सैन्य पद्धति पर सवाल तब उठता है, जब उनका सामना विदेशी आक्रमणकारियों से होता है। राजपूतों की पराजय ने उनकी सैन्य शक्ति की खामियों को उजागर कर दिया। राजपूतों की

पराजय के सैनिक कारणों में सर्वप्रथम राजपूत अश्वारोही सेना की दुर्बलता सामने आती है, जो अपेक्षाकृत दुर्बल और कम गतिशील थे।[11] इसी कारण वह आघात तथा पर्शियन सामरिकी जैसी सामरिकी का प्रयोग नहीं कर सके। जबकि मुस्लिम घुड़सवार सेना बहुत श्रेष्ठ थी तथा उपरोक्त सामरिकी में दक्ष थी।[12]

राजपूतों द्वारा हाथियों के प्रयोग ने भी उनकी शक्ति पर नकारात्मक प्रभाव डाला। इनके प्रयोग से जहाँ एक ओर उनकी गतिशीलता प्रभावित हुई, वहीं दूसरी ओर यही गजसेना घायल होने पर आत्मघाती भी साबित होती थी।

सामान्यतः राजपूत नैतिकता एवं स्वाभिमान से परिपूर्ण रहते थें इसलिये वह कूटनीति या चालाकी के प्रयोग को हेय दृष्टि से थे। जबकि कूटनीति युद्धनीति का एक अभिन्न अंग है जिसमें मुस्लिम आक्रमणकारी अनुभवी थे।[13]

राजपूतों ने समय के साथ–साथ संगठन एवं नीति में काल व परिस्थिति के अनुरूप परिवर्तन नहीं किया। योग्यता की जगह पैतृक अधिकार की नीति ने इसे और कमजोर कर दिया। जागीरदारी सैन्य व्यवस्था के चलते सैनिक राजा अथवा देश के प्रति अपना कर्तव्य न समझकर अपने स्थानीय जागीरदारों के प्रति वफादारी रखते थे। जबकि मुस्लिम आक्रमणकारी इन तमाम खामियों से दूर तथा संगठित थे।[14]

इन सब के अलावा राजपूतों ने भी उत्तर–पश्चिम के दर्रो से होकर आने वाले आक्रमणकारियों से उनकी स्वतंत्रता के लिये हो सकने वाले खतरे को सही तरीके से नहीं समझा। यदि वह इस संभावित खतरे का सही अनुमान लगा देते तो निश्चय ही वह अपनी शक्ति एवं प्रतिरक्षात्मक नीति को और विकसित करने का प्रयास करते। इन्होंने कला एवं विज्ञान से सम्बन्धित अनेक मूल्यवान सिद्धांतों का निर्माण करने की बजाय, उसको उपेक्षित किया। इन्हीं कमियों को दर्शाते हुए प्रसिद्ध इतिहासकार के0एम0 पनिक्कर ने लिखा है कि "भारतवर्ष में 12वीं शताब्दी में हिन्दुओं के पराजय के अन्य अनेक कारणों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण कारण यह था कि वह युद्ध तथा प्रतिरक्षा के उचित सिद्धांतों का निर्माण नहीं कर सके। इसी कारण उत्तरी भारत पर मुसलमानों का अधिकार हुआ। मुसलमानों के पतन तथा अंग्रेजों के भारत पर अधिकार का भी यही कारण था।"[15]

राजपूतों से सम्बन्धित तमाम तथ्यों का अध्ययन करने के बाद यह कहा जा सकता है कि उनकी सैन्य पद्धति में कुछ कमियाँ आ गयी थी, लेकिन उनका व्यक्तिगत साहस एवं चरित्र निःसन्देह उच्च कोटि का था। यदि वह काल एवं परिस्थिति के अनुरूप अपनी सैन्य पद्धति एवं युद्धनीति में परिवर्तन किये होते, तो संभव था कि इतिहास कुछ और होता।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची–

1. भारतीय सामंतवादः– राम शरण शर्मा; पृ0सं0 161
2. मध्यकालीन भारत (8वीं से 18वीं शताब्दी):– एक सर्वेक्षण : इमत्याज अहमद, पृ0सं0 20
3. वही
4. वही, पृ0 सं0 21
5. मध्यकालीन भारत (सल्तनतकाल से मुगलकाल तब) :– सतीश चन्द्र, पृ0सं0 21
6. वही
7. इंडियन आर्ट ऑफ वॉर :– डेविड मेजर अल्फ्रेड डी
8. मिलिट्री हिस्ट्री ऑफ इंडिया :– जदुनाथ सरकार, पृ0सं0 81–82
9. मुगलकालीन भारत का इतिहास :– आर0आर0 सेठी एवं वी0डी0 महाजन
10. वही
11. मध्यकालीन भारत (सल्तनत काल से मुगल काल तक) :– सतीश चन्द्र, पृ0 सं0 3
12. क्रसेडिंग वॉरफेयर :– आर0सी0 स्मेल, पृ0सं0 78
13. तबकाते नासीरी :– हसन निजामी (अनुवादक– रैवर्टी), खण्ड–1, पृ0सं0 466
14. मध्यकालीन भारत (सल्तनत काल से मुगल काल तक) :– सतीश चन्द्र, पृ0 सं0 20
15. प्राब्लम्स ऑफ इंडियन डिफेन्सः के0एम0 पनिक्कर